http://in.jagran.yahoo.com/news/opinion/general/6_3_6466415.html/print/

समाचार

चिंताजनक आंकड़े

Jan 01, 05:30 am

Print

ग्लोबल वार्मिंग के मुद्दे पर पूरी दुनिया को पसीना छूट रहा है। बीते सौ सालों में पृथ्वी की सतह का तापमान एक डिग्री बढ़ गया है। इस सदी में तापमान में और भी तेजी से वृद्धि होने की आशंका है। तापमान में इस वृद्धि से विश्व की खाद्य सुरक्षा पर घातक प्रभाव पड़ेगा। यदि वैश्विक ताप में वृद्धि पर अंकुश नहीं लगाया गया तो खाद्य पदार्थों का वैश्विक उत्पादन 30 प्रतिशत तक घट सकता है। कृषि उपज पर पड़ने वाले प्रभावों को भारत के संदर्भ में आसानी से समझा जा सकता है। गेहूं व धान भारत की प्रमुख फसलें हैं। देश में कुल कृषि उपज में 42.5 प्रतिशत हिस्सा धान का है। चूंकि जलवायु परिवर्तन से वर्षा अनियमित हो रही है इसलिए वर्षा आधारित खेती होने के कारण धान की पैदावार पर सबसे ज्यादा दुष्प्रभाव पड़ेगा। दो डिग्री सेंटीग्रेट तापमान बढ़ने से धान का प्रति हेक्टेयर उत्पादन 75 क्विंटल कम हो जाएगा। भारत का औसत धान उत्पादन 900 लाख टन है। तापमान की वर्तमान वृद्धि दर के आधार पर धान के उत्पादन में 2020 तक 6.7 प्रतिशत, 2050 तक 15.1 प्रतिशत और 2080 तक 28.2 प्रतिशत की कमी आने की आशंका है।

संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन की 2009 में जारी एक रिपोर्ट के मुताबिक तापमान में प्रति डिग्री सेल्सियस की बढ़त के साथ भारत में गेहूं की उपज दर में प्रति वर्ष 60 लाख टन की कमी आएगी। वर्तमान कीमतों के आधार पर आर्थिक नुकसान की गणना करें तो प्रति वर्ष करीब सात हजार करोड़ रुपये से ज्यादा का नुकसान होगा। वर्तमान गति से तापमान बढ़ता रहा तो गेहूं के उत्पादन में 2020 तक 5.2 प्रतिशत, 2050 तक 15.6 प्रतिशत और 2080 तक 31.1 प्रतिशत की कमी आने की आशंका है। इसी तरह की गिरावट अन्य फसलों में भी आ सकती है।

अंतरराष्ट्रीय खाद्य नीति शोध संस्थान ने विश्व स्तर पर जलवायु परिर्वतन की वजह से खाद्य पदार्थों के उत्पादन और उनकी कीमतों पर पड़ने वाले प्रभावों पर एक विस्तृत अध्ययन किया है। इसके मुताबिक जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव से 2050 तक गेहूं की उत्पादकता में 50 प्रतिशत, चावल में 17 प्रतिशत और मक्के की उत्पादकता में 6 प्रतिशत की कमी आएगी। परिणामस्वरूप इन कृषि उत्पादों की कीमतें आसमान छूने लगेंगी। अध्ययन के मुताबिक इन कृषि उपजों की कीमतों में 180 प्रतिशत से 194 प्रतिशत तक का इजाफा होगा। इस दौरान गेहूूं की कीमत बिना जलवायु परिवर्तन के 40 प्रतिशत, चावल की कीमत 60 प्रतिशत व मक्का की कीमत 30 प्रतिशत बढ़ जाएगी। जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप बढ़ी महंगाई से आम आदमी के उपभोग पर नकारात्मक प्रभाव पड़ना निश्चित है। आशका है कि कीमतें बढ़ने से 2050 तक अनाज उपभोग 50 प्रतिशत तक घट सकता है। इस आधार पर कैलोरी उपलब्धता में 15 प्रतिशत की गिरावट आएगी। रिपोर्ट यह भी कहती है कि जलवायु परिवर्तन का सबसे बुरा प्रभाव दक्षिण एशियाई देशों पर पड़ेगा, जिससे इस क्षेत्र में रह रहे 1.6 अरब लोगों की खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ जाएगी और संयुक्त राष्ट्र के दुनिया से भूख और कुपोषण मिटाने के प्रयास अप्रभावी हो जाएंगे।

सबसे महत्वपूर्ण सवाल यह है कि आखिर जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को न्यूनतम कैसे किया जाए। आईएफपीआरआई की रिपोर्ट का आकलन है कि इसके लिए दक्षिण एशिया में कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिए 1.5 अरब डालर के अतिरिक्त वार्षिक निवेश की जरूरत पड़ेगी। वैश्विक स्तर पर इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सात अरब डालर के निवेश की आवश्यकता पड़ेगी, जबकि खाद्य एवं कृषि संगठन पहले ही कह चुका है कि 2050 में दुनिया की पूरी आबादी को भरपेट भोजन के लिए खाद्यान्न उत्पादन को 70 प्रतिशत बढ़ाने की जरूरत होगी। खासकर दुनिया के दो विशालतम उपभोक्ता देशों भारत व चीन को कम से कम 29 अरब डालर निवेश करने की आवश्यकता है। जलवायु परिवर्तन से खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ने वाली है। इससे बचने के लिए कृषि में भारी निवेश और पर्यावरण अनुकूल प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करना होगा। जलवायु परिवर्तन एक ऐसा मसला है जिसके लिए निर्विवाद रूप से सबसे ज्यादा विकसित देश जिम्मेदार हैं। इसलिए पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने की पहली जिम्मेदारी विकसित देशों की ही बनती है। इसकी भरपाई तभी हो सकती है जब विकसित देश अपने सकल घरेलू उत्पाद का एक निश्चित हिस्सा जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को कम करने पर खर्च करें।

[हेमंत पांडे: लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं]

खाद्यान्न भंडारण का वही पुराना राग

30/04/2010 02:19:00Abhishek Tandon

हेमंत पांडे

खाद्य संकट के लिए आमतौर पर कृषि उपज में कमी को जिम्मेदार ठहरा दिया जाता है। पर देश के किसानों ने इस बार दो फसलों आलू और गेहूं का पर्याप्त उत्पादन किया है। सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि किसानों की अथक मेहतन से तैयार फसल के सुरक्षित भंडारण की समुचित व्यवस्था देश में नहीं है। शीतगृहों के अभाव में आलू भंडारण संकट का मामला शांत भी नहीं हुआ था कि भारतीय खाद्य निगम (एफसीआई) के पास गेहूं भंडारण की पर्याप्त व्यवस्था न होने की बात सामने आ रही है। सही मायने में देश में भंडारगृहों और शीतगृहों की कमी का खामियाजा देश के किसानों को ही भुगतना पड़ता है। देश में बीते साल के 314 लाख टन की तुलना में इस साल 327 लाख टन आलू उत्पादन हुआ है। देश के किसान इस वक्त आलू के दाम अच्छे न मिलने के कारण नवम्बर तक आलू शीतगृहों में रखते हैं।

लेकिन सरकारी आंकड़ों के मुताबिक देश में शीतगृहों की संख्या 5400 है, जिनकी क्षमता महज 240 लाख टन भंडारण की है। इनमें सर्वाधिक शीतगृह उत्तर प्रदेश में हैं। इनकी क्षमता भी 97 लाख टन है जबकि राज्य में 125 लाख टन आलू की पैदावार हुई है। इसी प्रकार दूसरे सबसे बड़े आलू उत्पादक राज्य पश्चिम बंगाल में महज 402 शीतगृह हैं। ये गत वर्ष उत्पादित 52 लाख टन आलू के लिए भी पर्याप्त नहीं थे जबकि इस साल आलू उत्पादन करीब 100 लाख टन है। भंडारण के अभाव में आलू उत्पादक कौड़ियों के भाव आलू बेचने को मजबूर हुए। किसानों को देश के कुछ इलाकों में तो आलू का भाव एक रूपए प्रति किलो से भी कम मिला। कृषि उपज विपणन समिति (एपीएमसी) के अनुसार पश्चिम बंगाल में 2.80 रूपए और उत्तर प्रदेश में 3.10 रूपए प्रति किलो आलू है। यह भाव भी आलू उत्पादन में लगने वाली औसत लागत से कम है। देश में प्रति किलो आलू उत्पादन की लागत 3.50 रूपए आती है।

आलू उत्पादकों का संकट अभी टला भी नहीं था कि अब यही कहानी गेहूं उत्पादकों के साथ दोहराई जा रही है। गौरतलब है कि इस बार देश में गेहूं की पैदावार अच्छी होने का अनुमान है। गेहूं एक अप्रैल से ही मंडियों में बिकने के लिए आने लगा है। गेहूं उत्पादक अधिकांश राज्यों में किसानों को मंडियों में गेहूं खरीद के लिए इंतजार करना पड़ रहा है। उत्तर प्रदेश में सरकारी खरीद का सही प्रबंध न होने के कारण राज्य के किसान न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) से नीचे गेहूं बेचने को मजबूर हैं। प्रमुख गेहूं उत्पादक राज्य हरियाणा व पंजाब में भारी मात्रा में गेहूं खरीदने वाली कारगिल, अदानी और आइटीसी जैसी बड़ी कम्पनियों ने इस बार हाथ पीछे खींच लिए हैं। इन राज्यों के मिल मालिक उत्तर प्रदेश से गेहूं खरीद रहे हैं। नतीजन, किसानों को पूरा

गेहूं सरकारी एजेंसियों को ही बेचना होगा। दोनों राज्यों का 185 लाख टन गेहूं खरीद का लक्ष्य है। लेकिन इन राज्यों में भंडारण की क्षमता महज 125 लाख टन की है। ऐसे में 60 लाख टन गेहूं कहां रखा जाएगा इसका जवाब किसी के पास नहीं है।

मध्यप्रदेश में 45 लाख टन गेहूं खरीद का लक्ष्य रखा गया है जबकि राज्य में भंडारण व्यवस्था महज 23.9 लाख टन की है। राजस्थान की पिछले साल के 10 लाख टन गेहूं खरीद की तुलना में इस सीजन में 7 लाख टन गेहूं खरीदने की योजना है। यहां भी गेहूं भंडारण के लिए सरकार निजी क्षेत्र के गोदामों को किराए पर ले रही है। ऐसे में चालू सीजन में देश भर में 262.67 लाख टन गेहूं खरीदने का लक्ष्य पूरा होने पर यह कहां रखा जाएगा यह चिंता का विषय है। तय है कि सरकारी एजेंसियां खरीद भी लेती हैं तो यह गेहूं आम आदमी तक पहुंचने की बजाए खुले आसमान के नीचे सड़ेगा।

देश को अनाज, फल व सब्जियां सुरक्षित रखने के लिए बड़े पैमाने पर भंडारगृहों और शीतगृहों की आवश्यकता है। इस समय एफसीआई की कुल भंडारण क्षमता 284.50 लाख टन मात्र है। हाल में एफसीआई ने आगामी डेढ़ साल में अनाज भंडारण क्षमता 126 लाख टन बढ़ाने की योजना बनाई है। हांलाकि इसके बाद भी भंडारण की व्यवस्था पूरी नहीं हो पाएगी। फिक्की के एक आकलन के मुताबिक शीतगृहों की कमी से देश में 30 ये 35 प्रतिशत यानी 600 लाख टन फल-सब्जियां प्रतिवर्ष बर्बाद हो जाती हैं, जिनकी कीमत करीब 58,000 करोड़ रूपये बैठती है। एक अन्य आकलन के मुताबिक उत्पादन के बाद आम उपभोक्ता के पास पहुंचने तक देश में ढुलाई और भंडारण की उचित व्यवस्था के अभाव में 30 प्रतिशत से अधिक अनाज बर्बाद हो जाता है। दुनिया में सर्वाधिक भूखों वाले देश में इतना अनाज बर्बाद हो जाना गंभीर अपराध नहीं तो और क्या है

---

http://www.samaylive.com/feed/article-hindi/-.txt

गरीब मुल्कों में जमीन की लूट

==========

Hemant Pandey on 02/07/2010 03:22:00

हेमंत पांडे

गरीब मुल्कों में जमीन की लूट जिसकी पृष्ठभूमि वैश्विक कृषि एवं खाघ संकट ने लिखी है। खाघ असुरक्षा का सामना कर रहे कई देश अपनी घरेलू अनाज की जरूरतों को पूरा करने के लिए दूसरे देशों में खेती की जमीन खरीद रहे हैं या लीज पर ले रहे हैं। खाघ जरूरत के अलावा जैव ईंधन के उद्देश्य से भी यह खरीद-फरोख्त हो रही है। जमीन की खरीद-फरोख्त की यह कवायद खासकर गरीब लैटिन अमेरिकी और अफ्रीकी देशों में की जा रही है। लेकिन एशिया के गरीब मुल्क भी इसकी मार अछूते नहीं रहे हैं।

इस प्रक्रिया का सबसे ज्यादा खमियाजा इन देशों के छोटे किसानों को भुगतना पड़ रहा है। वे अपनी जमीन से बेदखल हो रहे हैं और उनके सामने रोजी-रोटी का संकट आन पड़ा है। इन देशों की सरकारें भी अपने किसानों के हितों की रक्षा की बजाए जमीन-निवेशकों के हित में काम कर रही हैं और देश के कानूनों में ऐसे बदलाव कर रही हैं ताकि खरीददार को आसानी से जमीन मुहैया कराई जा सके।

एक तरफ रेतीली जमीन के कारण पर्याप्त अनाज उत्पादन न कर पाने वाले खाड़ी के देश विदेशों में कृषि जमीनों पर निवेश कर रहे हैं और दूसरी ओर अनाज उत्पादन में आत्मनिर्भर अमेरिका व यूरोप जैसे मुल्क भी विदेशों में अनाज उत्पादन कर विश्व व्याप्त खाघ संकट से लाभ उठाने की जुगत में हैं। अमेरिका व यूरोपीय देशों के बैंक, प्राइवेट इक्विटी समूह और धनकुबेर जमीनों में निवेश कर रहे हैं। अमेरिका इंटरनेशनल ग्रुप (एआईजी) ही अकेले करीब 650 लाख अमेरिकी डॉलर का निवेश कर चुका है।

ब्राजीली निवेशक लैटिन अमेरिकी और अफ्रीकी देशों में अनाज उत्पादन के साथ जैव ईंधन के उत्पादन के लिए निवेश कर रहे हैं। इसके लिए ब्राजील सरकार घरेलू निवेशकों को प्रोत्साहित ही नहीं कर रही है बल्कि निवेशकों को जमीन उपलब्ध कराने वाले देशों में सड़कों आदि के निर्माण में भी मदद दे रही है ताकि इन देशों के दुर्गम स्थलों से उत्पादित कृषि उपजों को सुगमता से ब्राजील लाया जा सके। खाड़ी के देशों ने अपने आयातित अनाज पर अपनी निर्भरता कम करने के लिए विदेशों में बडे पैमाने पर जमीन का अधिग्रहण किया है।

आकलनों के मुताबिक सउदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात (यूएई) विदेशों में अब तक 60 लाख एकड़ जमीन खरीद चुके हैं। 2006 से 2008 के बीच विदेशों में यूएई का कृषि निवेश 45 प्रतिशन बढ़ा है। 2006 में जो निवेश 10.9 अरब डॉलर था, 2008 में 15.8 अरब डॉलर पहुंच गया। इन देशों के निशाने पर प्रमुख रूप से पाकिस्तान, इंडोनेशिया और सूडान हैं।

इसके अलावा कतर की खाघ कंपनी 'हसाद फूड' ने 2010 में 50 से 70 करोड़ अमेरिकी डॉलर निवेश करने की योजना बनाई है। इससे कंपनी दूसरे देशों में चावल, चीनी,अनाज, मांस और पशु आहार का उत्पादन करेगी। सूडान में अपनी योजना को अमल में लाने के लिए एक सब्सिडरी कंपनी का गठन भी किया है। कंपनी की योजना सूडान में चीनी, अनाज और पशु आहार उत्पादन की है। सूडान सरकार निवेशकों के लिए सस्ती जमीन मुहैया कराने के लिए भरसक कोशिश कर रही है। सूडान में 60 हजार एकड़ जमीन महज 25 अमेरिकी सेंट प्रति एकड़ प्रतिवर्ष की दर से मिल रही है। इन जमीनों को 8 से 32 साल के लिए लीज पर दिया जा रहा है। इसके अलावा इन जमीनों पर खेती करने पर होने वाले लाभ पर भी चार साल के लिए करों पर पूरी छूट है। भारतीय कंपनियां भी जमीन खरीदने में पीछे नहीं है। 80 से अधिक भारतीय कंपनियों ने इंडोनेशिया, कीनिया, मेडागास्कर और मोजाम्बिक में लगभग 11,3000 करोड़ रूपए का निवेश किया है। इनकी योजना इन देशों में तिलहन और दलहन उत्पादन की है।

गौरतलब है कि इन दोनों कृषि जिंसों की देश में काफी कमी है और भारत प्रतिवर्ष इनके आयात पर बड़ी रकम खर्च करता है। दूसरे देशों की खाघ सुरक्षा के लिए जमीन देने पर इन देशों की भूखी व गरीब जनता का क्या होगा, इसका अनुमान इससे लग सकता है कि इन जमीनों पर उत्पादित सारा कासारा अनाज निर्यात होगा। उत्पादक देश के आयात-निर्यात नियम भी इस पर लागू नहीं होंगे और न ही निर्यात माल की इन देशों के निर्यात में गिनती होगी। सूडान के अलावा इन देशों के निशाने पर सिएरा लीऑन, कांगो गणराज्य, युगांडा, मेडागास्कर, घाना और इथोपिया जैसे गरीब मुल्क हैं। इथोपिया ही 2007 से अब तक ऐसे 815 समझौतों पर हस्ताक्षर कर चुका है। इथोपिया ने सऊदी अरब को जमीन पर शत-प्रतिशन निवेश की अनुमति दे दी है। गौरतलब है कि इथोपिया की करीब डेढ़ करोड़ की आबादी को भरपेट भोजन उपलब्ध नहीं हो पाता लेकिन अब तक यह अपनी सर्वाधिक उपजाऊ 30 लाख हेक्टेयर भूमि लीज पर दे चुका है।

---

http://webcache.googleusercontent.com/search?q=cache:rGJ3UZVBmeYJ:rashtriyasahara.com/NewsDetails.aspx%3FlNewsID%3D153152%26lCategoryID%3D42+&cd=3&hl=en&ct=clnk

कृषि : दलहन क्षेत्र में आत्मनिर्भरता जरूरी

हेमंत पांडे

भारतीय खानपान में दालों का खास महत्व है। दालें प्रोटीन का मुख्य स्रोत हैं। इसके पीछे दो प्रमुख कारण हैं। पहला भारतीय समाज के कई समुदायों में मांसाहार वर्जित है, जो अतिरिक्त प्रोटीन का मुख्य स्रोत है। दूसरा खास कारण यह है कि प्रोटीन के अन्य स्रोतों की तुलना में दालें सस्ती मानी जाती रही हैं। पर बीते सालों में जिस कदर दालों की कीमतें बढ़ी हैं 'दाल-रोटी खाओ प्रभु के गुण गाओ' वाला मुहावरा निरर्थक साबित हो चुका है। इसकी वजह देश की कृषि नीति में तलाशी जा सकती हैं जिसके कारण दाल उत्पादन देश के किसानों के लिए घाटे का सौदा बन गया है। हरित क्रांति के दौर में गेंहू और धान की उपज दर बढ़ाने पर विशेष जोर दिया गया था। इसमें अच्छी सफलता भी हासिल हुई। इसके अलावा केन्द्र सरकार की खरीद-नीति तथा अन्य समर्थक रणनीति ने भी दोनों प्रमुख खाघान्नों का उत्पादन बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। लेकिन दाल के मामले में सरकार ने जरूरत से ज्यादा लापरवाही एवं उदासीनता दिखाई। प्रौघोगिकी व कृषि पद्धति की दृष्टि से भी इसके उत्पादन में कोई उल्लेखनीय सुधार नजर नहीं आया। न कोई सामयिक योजना बनाई गई और न ही उत्पादकों को कोई अतिरिक्त प्रोत्साहन दिया गया। इसके अलावा जोखिम एवं लागत खर्च, सरकारी खरीद नीति की गैर मौजूदगी, उन्नत एवं उच्च उपज दर वाली प्रजाति के बीजों की कमी, कृषि क्षेत्र का दयनीय बुनियादी ढांचा दाल उत्पादन को बुरी तरह प्रभावित कर रहा है। बीजों की बात करें तो देश में धान और गेहूं के 90 प्रतिशत प्रमाणित बीज किसानों को मिल जाते हैं। 40 सालों में राष्ट्रीय बीज कॉरपोरेशन ने दालों के 400 बीज विकसित किए हैं पर इनमें से 124 का ही उपयोग उत्पादन के लिए किया जा रहा है। इनमें से भी 10-12 किस्में ही किसानो को आसानी से मिल पाती हैं। जहां दाल उत्पादन के प्रति सरकार

उदासीन रही है वहीं निजी कंपनियां भी इनके अनुसंधान पर पैसा खर्च नहीं करती हैं। इसकी एक बड़ी वजह है कि दाल खासकर दक्षिण एशिया की फसल है और निजी बीज कंपनियों को इसमें लाभ नजर नहीं आता। भारत में दाल की औसत उत्पादकता दर 600 किलो प्रति हेक्टेयर है जो संसार के सर्वक्षेष्ठ उपज दर वाले देशों से बहुत पीछे है। कुछ देशों में औसत उपज दर 1800 किलो प्रति हेक्टेयर तक दर्ज की जा रही है। अन्य फसलों और दलहन फसलों में किसानों के लाभ के अंतर को आसानी से समझा जा सकता है। दाल की उपज दर प्रति हेक्टेयर 600 किलो है जबकि धान की 3000 किलो प्रति हेक्टेयर से अधिक। सरकार द्वारा अरहर के लिए 2009-10 में घोषित किया गया न्यूनतम सर्मथन मूल्य (एमएसपी) 2300 रूपए प्रति क्विंटल है। इसी दौरान धान का समर्थन मूल्य 1080 रूपए प्रति क्विंटल। यानी एक हेक्टेयर में दाल उत्पादन करने में किसान को एक लाख 38 हजार रूपए प्राप्त होता है जबकि इतनी ही भूमि पर धान बोने पर 3 लाख 32 हजार प्राप्त होते हैं। यानी दोगुने से ज्यादा। इसके अलावा दलहन की फसल तैयार होने में समय भी ज्यादा लगता है। करीब 8-10 माह में इसकी फसल तैयार होती है जबकि किसान साल में धान और गेहूं की दो फसल ले लेते हैं। दाल की फसल ठंड और गर्मी के प्रति भी ज्यादा संवेदनशीन होती है। भारत में कीड़ों-रोगों के साथ-साथ फसल पोषण का प्रबंधन भी कमजोर और अपर्याप्त है। परिणामस्वरूप उपज दर घट जाती है। रोगों के लगने की संभावना भी दाल की फसल में ज्यादा होती है। जैसे प्रोटीन के कारण इंसान दालों को पंसद करते हैं, कीट भी दालों को पसंद करते हैं। एक अध्ययन के मुताबिक 250 कीट दालों को खराब कर देते हैं। परिणामस्वरूप प्रतिवर्ष 20 लाख टन से अधिक दालें बरबाद हो जाती हैं। इधर सुखद संकेत यह है कि आजादी के साठ साल बाद देश के बजट में दलहन उत्पादन को प्राथमिकता दी

गई है। वित्त मंत्री प्रणब मुखर्जी ने देश में 60 हजार दलहन-तिलहन गांव बनाने के लिए 300 करोड़ का अतिरिक्त बजट आवंटित किया है। हालांकि, जिस कदर किसान दाल उत्पादन से मुंह मोड़ चुके हैं, यह बजट नाकाफी है। दलहन-तिलहन गांव के लिए आंवटित बजट देश के दाल आयात बिल का महज 2.5 प्रतिशत है। दाल उत्पादन के लिए खर्च किए जाने वाली कुल राशि भी आयात बिल का महज 6 प्रतिशत है। दालों के आयात पर देश सलाना 12 हजार करोड़ रूपए व्यय करता है जबकि योजनाओं का कुल सलाना बजट महज 700 करोड़ है। यदि देश को दालों के मामले में आत्मनिर्भर होना है तो दाल आयात का एक हिस्सा दाल उत्पादन में व्यय करना पडेगा ताकि आने वाले समय में दालों का आयात बजट कम हो और आम आदमी को उचित दाम पर सुगमता से दाल प्राप्त हो।

Updated : Tuesday, 06 Apr 2010, 00:04 [IST]

दाल गलाने की कोशिश

Jun 14, 12:19 am

http://in.jagran.yahoo.com/news/opinion/general/6_3_6488869.html

आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति (सीसीईए) ने बीते दिनों देर से ही सही, दालों का न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाकर एक सराहनीय कदम उठाया है। इसके तहत समिति ने 2010-11 के लिए दलहन के एमएसपी में 30 प्रतिशत तक की वृद्धि की है। उड़द का एमएसपी 380 रुपये बढ़ाकर 2900 रुपये, मूंग का 410 रुपये बढ़ाकर 3170 रुपये और अरहर का 700 रुपये बढ़ाकर 3000 रुपये प्रति क्विंटल कर दिया गया है। सरकारी एजेंसिया प्रति क्विंटल दाल पर 500 रुपये अतिरिक्त बोनस भी देंगी। यह अपने आप में रिकॉर्ड वृद्धि है। उम्मीद है कि इससे देश के किसान दाल उत्पादन के लिए प्रोत्साहित होंगे। देश में दाल की खपत लगभग 180 लाख टन है, जबकि उत्पादन क्षमता 145 लाख टन तक ही सीमित है। इस वजह से सालाना 20 लाख टन से अधिक दाल आयात करनी पड़ती है। 1994 में जहा देश 5.8 लाख टन दाल आयात करता था वहीं 2009 में दाल आयात 24 लाख टन पहुंच गया है।

गौर करने वाली बात यह है कि देश में बढ़ती जनसंख्या के साथ ही प्रति वर्ष 5 लाख टन दाल की खपत बढ़ रही है। यदि घरेलू उत्पादन नहीं बढ़ा तो 2012 तक देश को प्रतिवर्ष 40 लाख टन दाल आयात करना पड़ेगा। दालों के उत्पादन में पिछड़ने की प्रमुख वजह दाल उत्पादकों को अच्छी कीमत न मिलना है। इसकी वजह देश की कृषि नीति में तलाशी जा सकती है। हरित क्रांति के दौर में गेहूं और धान की उपज दर बढ़ाने पर विशेष जोर दिया गया था। इसमें अच्छी सफलता भी हासिल हुई। इसके अलावा केंद्र सरकार की खरीद नीति तथा अन्य समर्थक रणनीति ने भी दोनों प्रमुख खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया, लेकिन दालों के मामले में सरकार ने जरूरत से ज्यादा लापरवाही एवं उदासीनता बरती। प्रौद्योगिकी व कृषि पद्धति की दृष्टि से भी कोई उल्लेखनीय सुधार नजर नहीं आया। इसके अलावा जोखिम एवं लागत खर्च सरकारी खरीद नीति की गैर मौजूदगी, उन्नत एवं उच्च उपज दर वाले प्रजातियों के बीज की कमी, कृषि क्षेत्र का दयनीय बुनियादी ढाचा दाल उत्पादन को बुरी तरह प्रभावित कर रहा है। बीजों की बात करें तो देश में धान और गेहूं के 90 प्रतिशत प्रमाणित बीज किसानों को मिल जाते हैं। 40 सालों में राष्ट्रीय बीज कारपोरेशन ने दालों के बीजों की 400 किस्मों की प्रजातिया विकसित की हैं। इनमें से 124 का ही उपयोग उत्पादन के लिए किया जा रहा है। इनमें से भी 10-12 किस्में ही किसानों को आसानी से मिल पाती हैं। जहा दाल के प्रति सरकार उदासीन रही है वहीं निजी कंपनिया भी इसमें अनुसंधान पर पैसा खर्च नहीं करती हैं, क्योंकि दाल खासकर दक्षिण एशिया की फसल है और निजी बीज कंपनियों को इसमें लाभ नजर नहीं आता। भारत में दाल की औसत उत्पादकता दर 600 किलो प्रति हेक्टेयर है जो संसार के सर्वश्रेष्ठ उपज दर वाले देशों से बहुत कम है। अन्य फसलों और दाल की फसल में किसानों के लाभ के अंतर को 2009-10 के न्यूनतम समर्थन मूल्य की रोशनी में आसानी से समझा जा सकता है। दाल की उपज दर प्रति हेक्टेयर 600 किलो है जबकि धान की 3000 किलो प्रति हेक्टेयर से अधिक। सरकार द्वारा अरहर के लिए 2009-10 में घोषित किया गया न्यूनतम सर्मथन मूल्य 2300 रुपये प्रति क्विंटल था। इसी दौरान धान का समर्थन मूल्य 1080 रुपये प्रति क्विंटल। यानि एक हेक्टेयर में दाल उत्पादन करने में किसान को एक लाख 38 हजार रुपये प्राप्त होता है, जबकि इतनी ही भूमि पर धान बोने पर 3 लाख 32 हजार रुपये प्राप्त होते हैं।

इसके अलावा दाल की फसल तैयार होने में समय भी ज्यादा लगता है। करीब 8-10 माह में इसकी फसल तैयार होती है, जबकि किसान साल में धान और गेहूं की दो फसल ले लेते हैं। दाल की फसल ठंड और गर्मी के प्रति भी ज्यादा संवेदनशील होती हैं। भारत में कीटों तथा रोगों के साथ-साथ फसल पोषण का प्रबंधन भी कमजोर और अपर्याप्त है। दालों का उत्पादन उपभोग की तुलना में बहुत कम होने और कीमतों के आसमान छूने के बाद सरकार ने इस ओर अब जाकर ध्यान देना प्रारंभ किया है। समर्थन मूल्य में वृद्धि से पहले पिछले बजट में आजादी के साठ साल बाद दाल उत्पादन को प्राथमिकता दी गई। वित्तमंत्री ने देश में 60 हजार दलहन-तिलहन गाव बनाने के लिए 300 करोड़ का अतिरिक्त बजट आवटित किया, लेकिन जिस कदर दाल उत्पादन से किसान मुंह मोड़ चुके हैं, यह बजट नाकाफी है।

[हेमंत पांडे: लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं]